भारतीय शैवागमिक पर्यालोचन

प्रवीण कुमार द्विवेदी

कूटशब्दाः *तन्त्र, दशशैवागम, अष्टादश रुद्रागम, वीरशैव*

भारतवर्ष विविधताओं का राष्ट्र है । यहाँ अनेकता में अद्भुत एकता दृष्टिगोचर होती है, जो भौगोलिक परिदृश्य में कश्मीर से कन्याकुमारी तक व्याप्त है । इस भारतीय परम्परा में सनातन धर्म सर्वप्राचीन माना जाता है क्योंकि उसका आदिस्रोत वेद है । वेद केवल भारतीय सभ्यता ही नहीं अपितु विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ माने जाते हैं । श्रुति भी द्विविध (वैदिक एवं तान्त्रिक) ज्ञानधाराओं का प्रतिनिधित्व करती है । जिनमें तान्त्रिक ज्ञानधारा का भी विशेष महत्त्व है । इस ज्ञानधारा के विविध आगमों में शैव आगम महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । प्रस्तुत शोधपत्र में शैव आगम के विविध शाखाओं का विशद परिचय प्रदान किया गया है ।

प्रपञ्चसारतन्त्र में आगम के महत्त्व को प्रदर्शित किया गया है–

''श्रुत्यक्तस्तुकृते धर्मस्त्रेतायां स्मृतिसम्भवः ।
द्वापरे तु पुराणोक्तः, कलावागमसम्भवः ॥''[1]

शारदातिलक तथा महर्षि हारीत के वचनानुसार भी आगम पञ्चम वेद ही हैं– ''**आगमो पञ्चमो वेदः कौलस्तु पञ्चमाश्रमः ।**''[2] त्रिपुरारहस्य में तो वेद को भी आगम का ही अंश माना गया है–''**वेदोह्यागमभागः ।**''[3] आगम श्रुतिसम्मत ही है, भले वह वेदांश हो या वेदानुसारी तंत्र। दुःख का विषय यह है कि आधुनिक समाज आगमों की विशुद्ध वैदिक साधनापद्धति को भूलकर प्रायः आसुरी तन्त्र का ही चयन करता है, फलतः सात्विक भावों को धारण करने वाले भक्त तथा साधक भी अनुचित आचरण करने लगते हैं।

आगम

आगम की व्युत्पत्ति निम्नलिखित है:–''**आप्तवचनादाविर्भूतमर्थविशेषसंवेदनमागमः ।**''[4] अर्थात् सत्पुरुष की वाणी से आविर्भूत होकर अर्थ विशेष का अनुभव कराने के कारण इनका

अभिधान आगम है। आगम की प्रचलित परिभाषा उसको उपदिष्ट सिद्ध करती है।[5] वाचस्पति मिश्र के अनुसार ‘‘**आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्माद् अभ्युदयनिश्श्रेयसोपाया: स आगम**’’[6] आगम की व्युत्पत्ति है। आगम का यौगिकार्थ है:–‘‘**आ समन्ताद् अर्थं गमयतीति आगम: ।**’’[7] अर्थात् जो विषयों का दिग्दर्शन कराए वह आगम है। आगम का अपर अभिधान तन्त्र है ‘‘**तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन।**’’[8] इन व्युत्पत्तियों द्वारा विद्वान् तन्त्र शब्द का अर्थ प्रतिपादित करते हैं। कामिकागम में कहा गया है कि जो तन्त्र मन्त्र से समन्वित अर्थों का विस्तार करता है, पुन: उस विशालता से हमारी रक्षा करता है, वह तन्त्र है।[9] प्रत्येक आगम के चार पाद होते हैं–(1) क्रियापाद (2) चर्यापाद (3) योगपाद तथा (4) ज्ञानपाद।[10] बौद्ध तन्त्रों में ज्ञानपाद के स्थान पर अनुत्तर पाद का प्रयोग होता है।[11]

आगमों के भेद एवं सम्प्रदाय

शिव प्रोक्त कामकादि से वातुल पर्यन्त अट्ठाइस आगम शैवागम कहे जाते हैं। जिनमें प्रथम दस शैवागम तथा अवशिष्ट अष्टादश रुद्रागम हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं:–

दस शैवागम:—कामिकागम, योगजागम, चिन्त्यागम, कारणागम, अजितागम, दीप्तागम, सहस्रागम, सुप्रभागम तथा अंशुमदागम।

अष्टादश रुद्रागम:—विजयागम, निश्वासागम, स्वायम्भुवागम, अनलागम, मारवागम, रौरवागम, मकुटागम, विमलागम, चन्द्रज्ञानागम, बिम्बागम, ललितागम, प्रोद्गीतागम, सिद्धागम, सन्तानागम, सर्वोक्तागम, पारमेश्वरागम, किरणागम तथा वातुलागम।[12] आगमों के संक्षिप्त ज्ञान के लिए निम्नलिखित द्विविध तालिका द्रष्टव्य है, जो गोपीनाथ कविराज के ‘‘**तन्त्र एवं आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन**’’ नामक ग्रन्थ पर आधारित है, जिनमें शैवागम तीन बार ग्रथित हैं तथा रुद्रागम केवल दो बार ही ग्रथित हैं।[13]

दस शैवागम

क्रम संख्या	आगमों के नाम	क्रमश: प्राप्तकर्ता	श्लोक-परिमाण
1	कामिकागम (कामजागम (अभेदात्मक)	परमेश्वर-प्रणवशिव-त्रिकल -हर।	परार्द्ध परिमाण
2	योगजागम (पञ्चभेदात्मक)	परमेश्वर-सुधा-भस्म-प्रभु ।	एक लाख
3	चिन्तागम (षड्-भेदात्मक)	परमेश्वर-दीप्त-गोपति-अम्बिका ।	एक लाख
4	कारणागम (सप्तभेदात्मक)	परमेश्वर-कारण-शर्व- प्रजापति ।	एक करोड़
5	अजितागम (चतुर्भेदात्मक)	परमेश्वर-सुशिव-उमेश-अच्युत ।	एक लाख

क्रम संख्या	आगमों के नाम	क्रमशः प्राप्तकर्ता	श्लोक-परिमाण
6	सुदीप्तकागम (नवभेदात्मक)	परमेश्वर-ईश-त्रिमूर्ति-हुताशन ।	एक लाख
7	सूक्ष्मागम (अभेदात्मक)	परमेश्वर-सूक्ष्म-भव-प्रभञ्जन ।	एक लाख
8	सहस्रागम (दसभेदात्मक)	परमेश्वर-काल-भीम-खग ।	अज्ञात
9	सुप्रभेदागम (अभेदात्मक)	परमेश्वर-धनेश-विश्वेश-शशि ।	तीन करोड़
10	अंशुमान् (द्वादशभेदात्मक)	परमेश्वर-अंशु-अग्र-रवि ।	अज्ञात

अष्टादश रुद्रागम

क्रम संख्या	आगमों के नाम	प्रथम श्रोता	द्वितीय श्रोता
1	विजयागम	अनादिरुद्र	परमेश्वर
2	नि:श्वासागम	दशार्ण	शैलजा
3	पारमेश्वरागम	रूप	उशना
4	प्रोद्गीतागम	शूली	कच
5	मुखबिम्बागम	प्रशान्त	दधीचि
6	सिद्धागम	बिन्दु	चण्डेश्वर
7	सन्तानागम	शिवलिङ्ग	हंसवाहन
8	नारसिंहागम	सौम्य	नृसिंह
9	चन्द्रांशु-आगम (चन्द्रहासागम)	अनन्त	बृहस्पाति
10	वीरभद्रागम	सर्वात्मा	वीरभद्र-महागण
11	स्वायम्भुवागम	निधन	पद्मज
12	विरक्तागम	तेज	प्रजापाति
13	कौरव्यागम	ब्रह्मणेश	नन्दिकेश्वर
14	मकुटागम (मुकुटागम)	शिवाख्य (ईशान)	महादेव ध्वजाश्रय
15	किरणागम	देवपिता	रुद्रभैरव
16	गलितागम	आलय	हुताशन
17	आग्नेयागम	व्योमशिव	अज्ञात
18	?	?	?

गोपीनाथ कविराज के अनुसार अठारहवें आगम का नाम कहीं नहीं मिलता है, जबकि उपर्युक्त अष्टादश आगमों में वातुलागम को छोड़कर अन्य सम्पूर्ण आगमों के नाम यहाँ अवलोकित होते हैं । हो सकता है कि इनके मत में वातुलागम अष्टाविंशति आगमों के अन्तर्गत नहीं आता हो। अस्तु, तदनुसार श्रीकण्ठी के रुद्रागम की सूची में रौरवागम, विमलागम, विसरागम और सौरभेयागम अधिक है, साथ ही विरक्तागम, कौरव्यागम, मकुटागम तथा आग्नेयागम का नामोल्लेख नहीं है । इनमें किरणागम, पारमेश्वरागम, रौरवागम का उल्लेख अभिनवगुप्त विरचित ''तन्त्रालोक'' में भी है।[15]

तन्त्र

तन्त्र का भी तात्पर्य आगम है। तन्त्र के प्रमुखतया त्रिविध विभाग है:-ब्राह्मणतन्त्र, बौद्धतन्त्र तथा जैनतन्त्र। पुन:ब्राह्मणतन्त्र भी उपास्य देवताओं के भेद के कारण तीन हैं:-शैवागम, शाक्तागम तथा वैष्णवागम। इनमें भी वैष्णवागम (पाञ्चरात्रागम) विशिष्टाद्वैत के, शाक्तागम स्वरूपाद्वैत के तथा शैवागम द्वैत अद्वैत तथा शक्तिविशिष्टाद्वैत के प्रतिपादक हैं। प्राचीनकाल में तान्त्रिक सम्प्रदायों की संख्या अत्यधिक थी। इनमें से सभी साहित्य-सम्पदा की दृष्टि से समान रूप से समृद्ध थे, यह कथन न्यायोचित नहीं होगा। किसी सम्प्रदाय के ग्रन्थ अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं तो किसी सम्प्रदाय का केवल अभिधान ही प्राप्त होता है।

दार्शनिक दृष्टि की विभिन्नता के कारण माहेश्वर तन्त्र के प्रमुखतया त्रिविध विभाग हैं-द्वैत (शिवतन्त्र), द्वैताद्वैत (रुद्रतन्त्र) तथा अद्वैत (भैरवतन्त्र)। पूर्वोक्त माहेश्वर मतों का प्रचार निम्नलिखित भिन्न-भिन्न प्रान्तों में है:-

1. पाशुपत मत - गुर्जर (राजस्थान)।
2. शैव सिद्धान्त मत - तमिलनाडु।
3. वीर शैव मत - कर्णाटक।
4. स्पन्द या प्रत्यभिज्ञा - कश्मीर।

पारमेश्वरागम के अनुसार आगमसम्मत षड्विध दर्शनों में वीरशैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, वैनायक तथा कापालिक दर्शन ही परिगणित है । गोपीनाथ कविराज के अनुसार ये सम्पूर्ण विभिन्न सम्प्रदाय जो शिव से सम्बन्धित हैं, शैव अथवा माहेश्वर अथवा तान्त्रिक सम्प्रदाय के नाम से प्रचलित थे। वे हैं:-कुलमार्ग या कौलमत, पाशुपत मत, लाकुल मत, कापालिक मत, सोम मत, महाव्रत मत, जङ्गम मत, कारुणिक या कारुक मत, कालानल मत, कालामुख मत, भैरव मत, वाम मत, भट्ट मत, नन्दिकेश्वर मत, रसेश्वर मत, सिद्धान्त (रौद्र) मत। शैव दर्शन के मान्य आचार्य जे. सी. चटर्जी के

अनुसार शैवों के तीन ही प्रमुख भेद हैं–आगमशास्त्र, स्पन्दशास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र। सिद्धान्त शिखामणि तथा सिद्धान्तागम के अनुसार शिव प्रोक्त आगम शैव, पाशुपत, सोम तथा लाकुल भेद से बहुविध थे, जिनमें शैव के चार भेद थे– वाम–शैव, दक्षिण–शैव, मिश्र–शैव तथा सिद्धान्त–शैव। वाम–शैव शक्तिप्रधान, दक्षिण–शैव भैरव प्रधान, मिश्र–शैव सप्तमातृप्रधान तथा सिद्धान्त–शैव वेदप्रधान थे। पारमेश्वरागम (1/16–17) के अनुसार शैव सप्तविध हैं:–वीरशैव, अनादिशैव, आदिशैव, अनुशैव, महाशैव, योगशैव तथा ज्ञानशैव। सूक्ष्मागम में इन्हीं सप्तविध शैवों के नामभेद पाए जाते है:– आदिशैव, अनादिशैव, महाशैव, अनुशैव, अवान्तरशैव, प्रवरशैव तथा अन्त्यशैव। इनमें शिव अनादिशैव, आदिशैवों में (शिव के पञ्चमुख से प्रथमतया दीक्षित होने के कारण) कौशिक, कश्यप, भारद्वाज, अत्रि तथा गौतम परिगणित हैं। शैवागमों में उल्लिखित दीक्षाविधि से दीक्षित ब्राह्मण महाशैव तथा दीक्षासम्पन्न क्षत्रिय एवं वैश्य अनुशैव कहलाते हैं। यदि कोई शूद्र भी योग्यता के आधार पर शिवदीक्षा को प्राप्त करता है तो वह अवान्तर शैव कहलाता है। कुलाल (कुम्हार), पार्श्वक (पीठमर्दक) इत्यादि दीक्षा प्राप्त कर लेने पर प्रवरशैव कहलाते हैं। तदभिन्न अन्य जातियों के दीक्षासम्पन्न व्यक्ति अन्त्यशैव की कोटि में परिगणित किए जाते हैं। यह शैवों का सप्तविध विभाजन जाति पर आधारित है। सिद्धान्तशिखोपनिषद् के अनुसार शिव के पञ्चमुखों में सद्योजात मुख से ब्राह्मण, वामदेव मुख से क्षत्रिय, अघोर मुख से वैश्य, तत्पुरुष मुख से शूद्र तथा ईशान मुख से पञ्चशिवगणों (वीर, नन्दी, भृङ्गी, वृषभ तथा स्कन्द) का आविर्भाव हुआ।

तत्पश्चात् आचाराधारित शैवों का विभाजन भी सूक्ष्मागम में अवलोकित होता है। तदनुसार आचार भेद से शैवों के चार प्रकार हैं:–सामान्यशैव, मिश्रशैव, शुद्धशैव तथा वीरशैव । शिव के दर्शन और सामान्य पूजा करनेवाले सामान्यशैव, शिव–विष्णु–ब्रह्मा–स्कन्द–गणेश–आदित्य तथा अम्बिका की समान भाव से पूजा करनेवाले मिश्रशैव, शिव को एकमात्र सर्वशक्तिशाली माननेवाले तथा उनकी पूर्णभक्तिभाव से विधिवत् पूजा करनेवाले शुद्धशैव एवं जिनके राग द्वेषादि–दोष दूर हो गए हैं, आत्मतत्त्व की विचारणा में जो सदा लगे रहते हैं, तथा जिनके सारे विकल्पजाल नष्ट हो गए हैं, वे ही वीरशैव कहलाते हैं। चन्द्रज्ञानागम में अष्टविध शैवों का वर्णन है। इनके नाम इस प्रकार हैं– अनादिशैव, आदिशैव, पूर्वशैव, मिश्रशैव, शुद्धशैव, मार्गशैव, सामान्यशैव तथा वीर शैव।

षड्दर्शन समुच्चय के टीकाकार गुणरत्न ने शैव, पाशुपत, महाव्रतधर तथा कालामुख इन्हीं चारों वर्गों को माना है। वामनपुराण के अनुसार भी चतुर्विध ही शैव है:–शैव, पाशुपत, कालवदन तथा कापालिक। स्वच्छन्दतन्त्र के अनुसार भी पाशुपत, लाकुल, मौसुल तथा कारूकवैमल ये चार

शैव सम्प्रदाय हैं। यह भी कहा गया है कि ब्राह्मण शैव मत से, क्षत्रिय पाशुपत मत से, वैश्य कालामुख मत से तथा शूद्र कापाल मत से शिव की अर्चना करे। यामुनाचार्य प्रणीत आगमप्रामाण्य में कापालिक तथा कालामुख एवं रामानुजाचार्य प्रणीत ब्रह्मसूत्रश्रीभाष्य में कापाल तथा कालामुख द्विविध शैव ही वर्णित हैं । कर्णाटक प्रदेश में बहुतायत रूप में प्रचलित कालामुख का ही आधुनिक अभिधान वीर शैव है। जगन्नाथशास्त्री तैलङ्ग के मत में वेदान्त के आठ ही सम्प्रदाय है:-शाङ्कर, वीरशैव, रामानुज, माध्व, वल्लभ, निम्बार्क, गौड तथा रामानन्द। सिद्धान्त-प्रकाशिकाकार के अनुसार वेदान्त के केवल चार ही सम्प्रदाय हैं:-भास्करीय, मायावादी, शब्दब्रह्मवादी, क्रीडा-ब्रह्मवादी।

पश्चात् में आगम का अर्थ शब्द लेकर उसको शब्द प्रमाण से भी अलङ्कृत किया गया है। निष्कर्षत: ये विविध सम्प्रदाय वस्तुत: अनेकता में भी एकता स्थापित करने का ही प्रयत्न करते हैं क्योंकि इनमें कोई विशेष मतभेद नही हैं। सबने अन्तत: एक सत्यता स्वीकार करने का ही प्रयत्न किया है। आगमों के अन्तर्गत धर्म और दर्शन दोनों को समुचित प्राथमिकता प्राप्त होती है। धर्म जहाँ कर्म को प्राथमिकता प्रदान करता है, वही दर्शन ज्ञान को प्राथमिकता प्रदान करता है। उदाहरणत: औषधि का ज्ञान जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही उसका भक्षण या लेप भी आवश्यक है। फलत: ये द्विविध चिन्तन की धाराएँ सूक्ष्मतया पृथक् नही हैं। जहाँ धर्म को दर्शन माना गया है, वहीं दर्शन भी धर्म का ही पर्याय है। दोनों स्वात्मप्रत्यक्ष के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। स्थूलता में सूक्ष्मता का दिग्दर्शन करना दोनों का ही प्रधान लक्ष्य है। इन द्विविध चिन्तन-धाराओं के सम्यक् परिपालन से समाज की आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक उन्नति होती है क्योंकि एक ओर तो यह परम सत्ता स्थूलत: सखण्ड, सभेद, सद्वय, सक्रम तथा साकार है तो दूसरी ओर अखण्ड, अभेद, अद्वय, अक्रम तथा निराकार है।

अन्तटिप्पणी

1. आगममीमांसा, विमर्शवेदिका, श्रीलालबहादुरशास्त्रीसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली-16, प्रथम संस्करण 1982 ई0, पृष्ठ 4।
2. वही।
3. वही।
4. सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा (पीएच0 डी0 थिसिस):-डॉ0चन्द्रशेखर शिवाचार्य, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1989 ई0, पृष्ठ 7।

5. क्रियासार (भाग 2) :–नीलकण्ठ शिवाचार्य, मैसूर विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1954 ई0, पृष्ठ 85।
6. योगसूत्र, 1/25 तत्त्ववैशारदी टीका, पृष्ठ 232।
7. सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा (पीएच0 डी0 थिसिस) :–डॉ0 चन्द्रशेखर शिवाचार्य, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1989 ई0, पृष्ठ 7।
8. वही।
9. कामिकागम, 1–132।
10. सिद्धान्तशिखोपनिषद्, उमचिगिशङ्करशास्त्रिविरचित, (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 1998 ई0, प्रस्तावना पृ. 9।
11. आगममीमांसा :–पं0 व्रजवल्लभ द्विवेदी, श्रीलालबहादुरशास्त्रीसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली–16, प्रथम संस्करण 1982 ई0, पृष्ठ 4।
12. क्रियासार (भाग 1) :–नीलकण्ठ शिवाचार्य, मैसूर विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1954 ई0, पृष्ठ 85।
13. तन्त्र एवं आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, गोपीनाथ कविराज, परिमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2, संस्करण 2005 ई0, पृष्ठ 59– 61 ।
14. वही, पृष्ठ 61।
15. सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, (पीएच0 डी0 थिसिस) :–डॉ0 चन्द्रशेखर शिवाचार्य, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1989 ई0, पृष्ठ 8।
16. भारतीय दर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, पुनर्मुद्रित संस्करण 2001 ई0, पृ. 385।
17. पारमेश्वरागम, 1/22–23।
18. तन्त्र एवं आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, गोपीनाथ कविराज, परिमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2, संस्करण 2005 ई0, पृष्ठ संख्या 43।

19. Kashmir Shaivism, Heritage of Kashmiri pundits as “Abhinavagupta and the Shaivite traditions of Kashmir:-Saints and Savants of the Saradadesa :-Dr. Rajinish Mishra, published in pentagon press, 2009. pp. 7-21
20. ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, श्रीपतिपण्डितभगवत्पादाचार्य, ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट्, मैसूर, कर्णाटक, प्रथम संस्करण, 1977 ई0, पृष्ठ 44-45।
21. सूक्ष्मागम, क्रियाभाग 4-6।
22. सिद्धान्तशिखोपनिषद्, उमचिगिशङ्करशास्त्रिविरचित, (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 1998 ई0, 11, पृष्ठ 54।
23. सूक्ष्मागम, क्रियाभाग, 4-30।
24. चन्द्रज्ञानागम, 10/4-5।
25. भारतीय दर्शन का इतिहास (भाग 5) डॉ0एस0 एन0 दासगुप्त, (अनुवादक) सुश्री पी0 मिश्रा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर-4, प्रथम अनुदित संस्करण, 1975 ई0, पृष्ठ 9।
26. वामनपुराण, 6/87।
27. स्वच्छन्दतन्त्र, 11/71-72।
28. आगममीमांसा :- पं0 व्रजवल्लभ द्विवेदी, श्रीलालबहादुरशास्त्रीसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली-16, प्रथम संस्करण 1982 ई0, पृष्ठ 32।
29. वही।
30. वही, पृष्ठ 33, श्रीभाष्य 2/2/35।
31. वही।
32. सिद्धान्तशिखोपनिषद्, उमचिगिशङ्करशास्त्रिविरचित, (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 1998 ई0, प्रस्तावना, पृ. 8।
33. सिद्धान्तप्रकाशिका, सर्वात्मशम्भु, (सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 1996 ई0, पृष्ठ 24।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. आगममीमांसा, विमर्शवेदिका, श्रीलालबहादुरशास्त्रीसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली–16, प्रथम संस्करण 1982 ई0,
2. सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा (पीएच0 डी0 थिसिस):–डॉ0चन्द्रशेखर शिवाचार्य, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1989 ई0,
3. सिद्धान्तशिखोपनिषद्, उमचिगिशङ्करशास्त्रिविरचित, (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 1998 ई0,
4. आगममीमांसा :–पं0 व्रजवल्लभ द्विवेदी, श्रीलालबहादुरशास्त्रीसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली–16, प्रथम संस्करण 1982 ई0,
5. क्रियासार (भाग 1) :–नीलकण्ठ शिवाचार्य, मैसूर विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1954 ई0,
6. तन्त्र एवं आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, गोपीनाथ कविराज, परिमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2, संस्करण 2005 ई0,
7. तन्त्र एवं आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, गोपीनाथ कविराज, परिमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2, संस्करण 2005 ई0,

स्वोपज्ञवृत्तौ स्फोटस्वरूपम्

श्रीवत्सशास्त्री

कूटशब्दाः *स्फोटस्वरूपम्, भर्तृहरिः, स्वोपज्ञवृत्तिः,* शब्दतत्त्वं।

व्याकरण दर्शन परम्परायां भर्तृहरिः महनीयः लेखकः तस्य कृत्तिः वाक्यपदयं स्फोटचिन्तनस्य सम्यक विवेचनम् प्रस्त्तोति। प्रकृतेऽस्मिन् शोधपत्रैः भर्तृहरिः स्वोपज्ञवृत्ते स्फोटस्वरुपम कीदृक् वर्तते एतस्यएव चिन्तनम् अनुशीलनञ्च कृतम वृर्तते। स्फोटविवेचनम् न केवलं व्याकरणदर्शने वर्तते अपितु प्रकारान्तरेण विविधेषु ग्रन्थेषु प्राप्यते।

महत्यां स्फोटचिन्तनपरम्परायां भर्तृहरिः तस्य स्वोपज्ञवृत्तिश्च स्फोटचिन्तनस्य स्पष्टस्वरूपं विस्तृतस्वरूपं च सम्यक्तया विवृणुतः इति स्वीकृत-सिद्धान्तः। भर्तृहरेः कारिकासु प्रतिपादितः स्फोटसिद्धान्तः स्वोपज्ञवृत्तिप्रतिपादने विशदतरो जायते। कारिकासु सर्वप्रथम स्फोटतत्त्वं शब्दतत्व स्वरूपेण ब्रह्मरूपेण वा दृग्गोचरीभवति[1]। भर्तृहरिः व्यावहारिक दशायां शब्दस्य स्वरूपद्वयं स्वीकरोति- निमित्तरूपम् अर्थप्रत्यायकरुपञ्च। व्यावहारिकः शब्दः अत्र उपादानशब्देन निर्दिष्टः[2]। अर्थप्रत्यायनाय प्रयुज्यमानो यो नादः, तस्य च यो निमित्तभूतः, स स्फोटः। एष च बुद्धिस्थ इति व्याख्यातः। पुरा बुद्ध्या वितर्कितः सन् योऽर्थाय निवेशितो भवति स स्फोट उच्यते[3]। स्फोटः जले दृश्यमानं प्रतिबिम्बमिव वर्तते यत् वस्तुतः स्वरूपतः स्थिरमपि तरंगैश्चलायमानं प्रतीयते[4]। स्फोटस्य स्वरूपे शब्दस्य स्वरुपमर्थश्च प्रकाशितौ भवतः। एवम् अयम् अर्थस्य ग्राहकः स्वयं च ग्राह्यरूपेण अर्थात् नादव्यंग्यरूपेण परिगृहयते। अत्र प्रयुक्तो नादशब्दो ध्वनिपर्यायः। शब्दकौस्तुभकारेण अयं ''स्फुटत्यर्थोऽस्मादिति स्फोट इति कथितः[5]। अर्थ इति अर्थजगत्। भर्तृहरिरस्मिन्नेव सन्दर्भे संभवतः कथयति-विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः। ब्रह्माण्डस्य विस्फोटात् सृष्टिः, अण्डानां विस्फोटाद् अंकुरो यथा जायते तथैव वाक्तर्त्तित्त्वस्य विस्फोटात् शब्दसृष्टिर्जायते। वाक्तत्त्वस्य व्याप्तिस्तु सर्वविधविस्फोटेषु वरीवर्ति खलु। वागेव विश्वाभुवनानि जज्ञे इति श्रुतिवाक्यं परम्परया सर्वत्र प्रमाणमेव। सूक्ष्मात् स्थूलमुत्पद्यत इति सृष्टि नियमः। चैतन्याद् विना किमपि नोत्पद्यते। शब्दतत्त्वं च पश्यन्त्याः सूक्ष्मरूपं परावाग्रूपम्। इत एव एतत् कल्पनीयं भवति यत् केन विधिना शब्दतत्त्वं न केवलं शब्दजगतः दृश्यजगतोऽपि कारणमिति।